श्रीभैरवोपदेश

विज्ञान-योग

(सरल गुजराती भाषा एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

गुप्तावतार बाबाश्री

'चण्डी' वर्ष ४६, विशिष्ट अङ्क—७

विज्ञान-योग

अन्तराग्निहोत्र

सहित

रचयिता
गुप्तावतार बाबाश्री

अनुवादक
'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

सम्पादक एवं टिप्पणी-कर्त्ता
'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल
श्री ऋतशील शर्मा

प्रकाशक
कल्याण-मन्दिर प्रकाशन,
चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग,
इलाहाबाद—२११००६

द्वितीय संस्करण : : फाल्गुन-पूर्णिमा २०४४ वि०—३ मार्च १९८८

मूल्य : [redacted] रु०

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक
परावाणी प्रेस,
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—२११००६

अ - नु - क्र - म

१	पुस्तक-परिचय	४
२	विषय-प्रवेश	६
३	विज्ञान-योग	९
४	अन्तराग्निहोत्र	३३

पुस्तक-परिचय

(मूल गुजराती संस्करण का संक्षिप्त अंश)

'श्री भैरवोपदेश' में सबसे पहले 'निष्काम योग' का वर्णन किया गया है। 'निष्काम योग' की पूर्ति हेतु 'कर्म-संन्यास योग' का वर्णन किया गया है। (ये दोनों अब पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं)।

'कर्म-संन्यास योग' के बाद 'अध्यात्म योग', 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग' एवं 'वैराग्य योग' का वर्णन किया गया है। (ये तीनों भी पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं)।

'वैराग्य योग' के बाद, इस उद्देश्य से कि मानवीय जीवन वासनाओं से मुक्त होकर उच्च स्थिति प्राप्त करे, 'अन्तराग्नि-होत्र' एवं दिव्य-भाव सूचक 'विज्ञान-योग' का वर्णन हुआ है। (प्रस्तुत पुस्तक में 'विज्ञान-योग' और 'अन्तराग्नि होत्र' प्रकाशित हैं।)

इस प्रकार इस छोटे से ग्रन्थ में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति ऐसी जगत्-हितकारी एक नई योजना उपस्थित की गई है, जिससे सरल दृष्टि, सरल बुद्धि और सरल स्वभाव के व्यक्तियों का भी उपकार हो सकता है।

—शङ्कराचार्य श्रीस्वामी त्रिविक्रम तीर्थ जी

लींबड़ी, सं० १९९१, नवम्बर १९३४

गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के आधार पर—

विषय-प्रवेश

विज्ञान-योग से सुन्दर योग दूसरा कोई नहीं है !

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन, उसकी जाग्रत् भावनाओं से कल्पित होता है। नए-नए गुण क्षण-क्षण में आते हैं—जाते हैं। इन सबसे क्रमशः जीवन का प्रवाह लम्बा होता जाता है। प्रवाह के उद्गम और अन्त-रूपी दो किनारों के बीच हमें ऐसे भिन्न-भिन्न स्थान दिखाई देते हैं, जहाँ एक ही व्यक्ति के जीवन के भिन्न-भिन्न रूप दिखाई देते हैं।

जीवन का प्रवाह, प्रत्येक व्यक्ति को सम रूप से नहीं मिलता। भिन्न-भिन्न भाव में, भिन्न-भिन्न गुणों के सम्पर्क में, भिन्न-भिन्न प्रवाह बनते हैं।

ऐसी स्थिति में, जीवन के प्रवाह को उद्गम से अन्त तक देख न सकने से, जीवन का मूल-भाव या सौन्दर्य हम जान नहीं पाते। अधिक-से-अधिक हम किसी व्यक्ति को एक बिन्दु पर देखते हैं और उसके जीवन-प्रवाह को कहीं सत्त्व, कहीं रज, कहीं तम के रूप में पहचानते हैं। अथवा कहीं अच्छा, कहीं बुरा समझते हैं। अस्तु।

जीवन के सौन्दर्य को देखने के लिये, हमें 'विज्ञान'-रूपी सम्यक् दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है और 'विज्ञान-योग' द्वारा ही अस्तित्व का वास्तविक दिग्दर्शन होता है। 'विज्ञान'

अथवा विशिष्ट ज्ञान, जो अनुभव-गम्य है, विचारों से सिद्ध होता है।

'विज्ञान'—विशिष्ट ज्ञान का भाव देखना अहङ्कार नहीं है। व्यक्ति अपने 'अस्तित्व' और 'मैं' को नहीं समझेगा, तो और क्या समझेगा? 'मैं जीता हूँ'—यह भाव कैसे जाग्रत् होगा? ज्ञानानुसार क्रिया ही जीवन की सर्व-श्रेष्ठ वस्तु है।

अतः जागते रहो! बुद्धि-मय प्रयत्न करते रहो! आलस्य न करो! सिद्धि-असिद्धि, हार-जीत, अच्छे-बुरे की अपूर्ण दृष्टि से प्रयत्न न करो, अपितु अपना अस्तित्व सँभालने के लिए करो। अपना जीवन-प्रवाह जीता-जागता रहे, इसलिये प्रयत्न किया जाता है। बुद्धि-मय भावों की प्रेरणा यदि हम बारम्बार करते रहें, तो सम्पूर्ण जीवन-प्रवाह मधु-मय हो जाता है।

इस प्रकार अपने अस्तित्व का अङ्ग-अङ्ग तौला हुआ रखना चाहिये। मेरी यह वृत्ति, इस (प्रलोभन) बिन्दु पर निरुपाय हो जाती है, इसे जानना चाहिए। वहाँ से वह वृत्ति अधिकतम (पराधीनता) में न जाने पाये, ऐसी सजगता होनी चाहिए।

अपनी वृत्तियों को सँभालकर रखना चाहिये। इन्द्रियों को रोकना चाहिये। अपनी वृत्तियों की निरुपाय होने को हद को पहचानना व सँभालना यही 'विज्ञान-योग' है। यही सिद्ध योग है। अपनी वृत्तियों का माप रक्खो कि कितनी लम्बी हैं, व कहाँ रुकती हैं। इससे सुन्दर योग दूसरा कोई नहीं है।

नाक पकड़ने से वास्तविक कुम्भक नहीं होता। कुम्भक तो मेढक को भी हो जाता है, परन्तु वह किस काम का! अपनी वृत्तियों को पूर्ण सजगता के साथ सँभालना ही वास्तविक कुम्भक है।

मन बुद्धि को ठगता है, बुद्धि मन को नहीं ठगती। यदि व्यक्ति जागता रहे, तो प्रभु सहायता करता है। यह सब करके देखने का प्रयोग है।

संसार सदैव गति-मय है। यहाँ स्व-अस्तित्व का प्रत्येक भाव गति-मय ही दिखाई देगा। अतः एक वस्तु, जो दिखती तो है परन्तु गति-मय है, उसे पकड़ने जाने से वह खिसक जायेगी। इस कारण प्रायः व्यक्तियों को जीवन-प्रवाह रस-हीन दिखाई देता है। प्रत्येक प्रेय वस्तु खिसक जाती है, प्रत्येक लक्ष्य छिटक जाता है। इस गति के कारण ही सार-मय वस्तु से भी सार ग्रहण नहीं किया जा सकता। प्रश्न उठता है कि सार मिलता कब है ?

जीवन-प्रवाह 'मन' में से बहता है। प्रत्येक 'मन' अपने अस्तित्व को मस्त धीमे प्रवाह में, तीव्र अनजान प्रवाह में नहीं, बहाकर जो चाहे, सो करा सकता है।

'मन' अत्यन्त वेग से सबको खींचता है। इसी से वह किसी भी तत्त्व को पकड़ नहीं सकता। यदि 'मन' की आकर्षण-गति रोक देने में आवे, तो सब सार-मय ही भासने लगेगा क्योंकि विश्व चैतन्य से भरा हुआ है। अणु-अणु में पूर्णता है।

'मन' की आकर्षण-गति रोकने के लिए 'आत्मा'-रूपी मोती हमारे पास है। इस 'मोती' को अच्छी तरह पकड़कर जीवन-प्रवाह में उतरेंगे, तो सब कुछ सार-मय दिखाई देगा। इसमें कोई सन्देह नहीं।

—ऋतशील शर्मा

प्रयाग, फाल्गुन पूर्णिमा २०४४ वि०

विज्ञान योग

आशा तजी फलोनी,
कर्तव्य ध्यान धारी,
स्थिर प्रज्ञ यज्ञ-कर्ता—
नी सात्विकी किनारी । १

सात्विक, राजसिक, तामसिक यज्ञ के प्रकार—

श्रेयत्व, मान, धन और पुण्य इत्यादि फलों की आशा न रखते हुए, केवल कर्त्तव्य को ध्यान में रखकर, स्थिर और दृढ़ बुद्धि से किया हुआ यज्ञ 'सात्विकी-यज्ञ' कहलाता है ।

आशा धरी फलोनी,
दम्भार्थ वा करे जो,
ते यज्ञ राजसी छे,
निज नाममां वरे जो । २

जो फलों की आशा रखकर, दम्भ के साथ अपना नाम बढ़ाने के लिए यज्ञ किया जाता है, वह 'राजसी-यज्ञ' कहलाता है ।

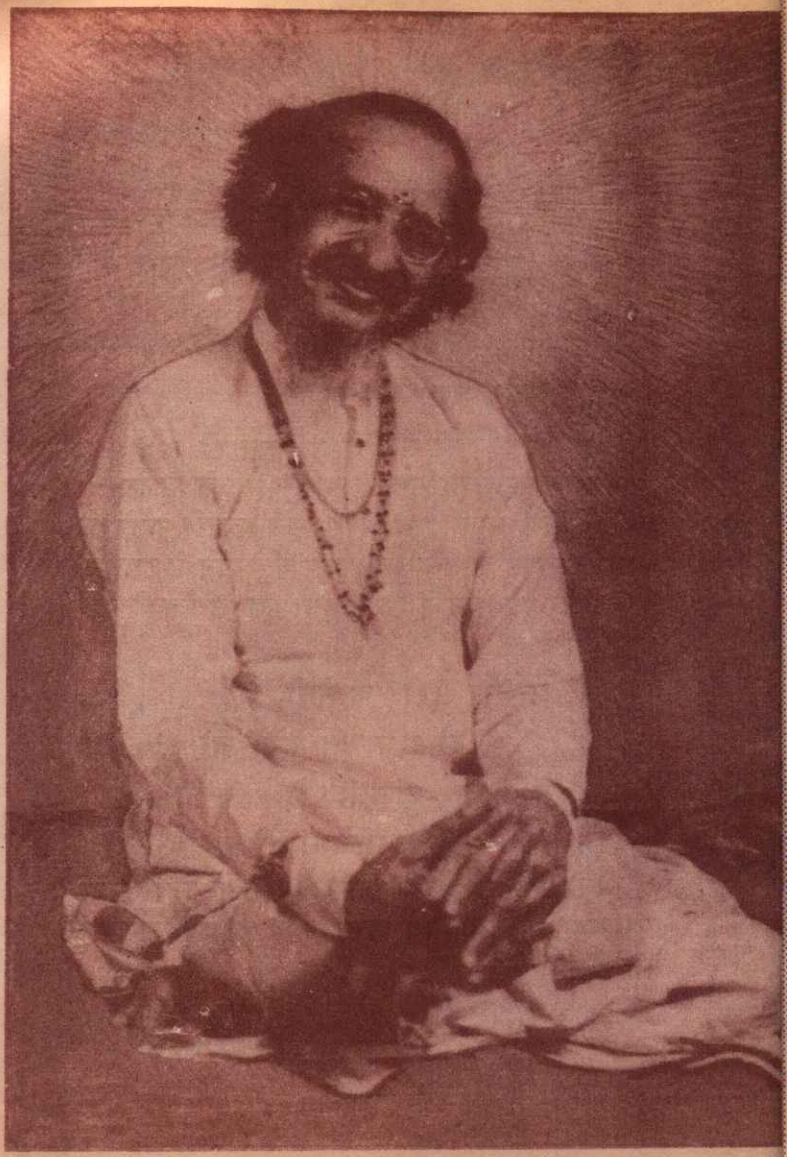

विधिहोन दान मन्त्रो,
ने दक्षिणा विनाना,
श्रद्धा विना करेला,
ते तामसी दिवाना । ३

जो यज्ञ विधि-रहित, दान-रहित, मन्त्र-रहित, श्रद्धा-रहित और दक्षिणा दिये बिना किया जाता है, वह 'तामसी-यज्ञ' कहलाता है ।

नीचे तीन प्रकार की तपस्यायें बताई हैं–

विद्वान देव द्विज श्री,
गुरु पाद पद्म पूजा,
ने शौच ब्रह्मचारी,
थई इष्ट पाद पूजा । ४

विद्वान्, देवता और ब्राह्मण का सम्मान करना और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, अपने गुरु की सेवा करना सबसे बड़ी इष्ट 'पाद-पूजा' है ।

सन्नम्रता, अहिंसा,
तप देहना गणाय,

कायिक करे तपस्या,
यमथी न ते हणाय । ५

नम्रता का व्यवहार करना, किसी को कष्ट न पहुँचाना—ये सब देह की तपस्यायें कहलाती हैं। जो लोग यह तपस्या करते हैं, वे यम (स्वर्ग-नर्क के देने-वाले) से अर्थात् द्वित्व के बन्धन से छूट जाते हैं।

मननी प्रसन्नता ने,
सौम्यत्व आत्म-निग्रह,
संशुद्धि भावनानी,
शूं मौन धैर्य विग्रह । ६

मन की प्रसन्नता, सौम्यता (शान्ति), आत्म-निग्रह (मन को उच्च गुणों में स्थित करने का प्रयत्न करना), भावना की संशुद्धि, मौन रहना, धैर्य रखना—

आ मानसी प्रवृत्ती,
तप साधना करे तो,
मनसा करे तपस्या,
ना मृत्युथी डरे तो । ७

ये सब मन की प्रवृत्तियाँ कहलाती हैं। जो इस प्रकार तप की साधना करता है, उसे मृत्यु का डर नहीं रहता।

ना वाक्य बोल एवां,
जेथी दुभाय कोनूं,
मन, बोल सत्य प्रिय हित,
चित जे लुभाय कोनू । ८

ऐसे शब्द मत बोलो, जिनसे किसी के चित्त में दुःख हो। सत्य भी ऐसा बोलना चाहिए, जो सुनने-वाले का मन प्रसन्न करे।

स्वाध्यायनूं मनन कर,
ते वाचिकी तपस्या,
त्रण आ प्रकार तपना,
कर चित्तथी तपस्या । ९

यह सब तथा अपनी हितकर बातों का चिन्तन करना और ईश्वर का स्मरण—यह 'वाचिकी तपस्या' है। इस प्रकार कायिक, मानसिक और वाचिक तपस्या करने से मनुष्य की उन्नति सरलता से होती है।

अब सात्विक, राजसी और तामसी तपस्या किसे कहते हैं, यह नीचे बताया गया है–

श्रद्धा फलो तजीने,
स्थिर चित्तथी करे जो,
ते सात्विकी तपस्या,
नर धन्य ते करे जो। १०

फलों की आशा त्याग कर श्रद्धा से और स्थिर-चित्त रहकर जो तपस्या की जाती है, वह 'सात्विकी तपस्या' कहलाती है। ऐसी तपस्या करनेवाले मनुष्य धन्य हैं।

सत्कार, मान, पूजाना,
अर्थ दम्भथी जे,
जन आदरे तपस्या,
जो राजसी थती ते। ११

सत्कार, मान, पूजा की इच्छा रखकर और पाखण्ड के साथ जो तपस्या की जाती है, वह 'राजसी तपस्या' कहलाती है।

हठ, कष्ट, देह आपी,
पर नाश कारणे जो,
लोको करे तपस्या,
ते तामसी गणे जो। १२

दूसरों का नाश करने के लिए हठ करके शरीर को कष्ट देते हुए जो तपस्या की जाती है, वह 'तामसी तपस्या' कहलाती है।

दान तीन प्रकार के कहे गए हैं—

उपयुक्त स्थान समुचित,
समये जो दान आपो,
दातव्य भावनाथी,
सत्पात्र मान आपो। १३

उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त समय पर दातव्य-भाव से सत्पात्र को सम्मान देते हुए—

बदला तणी दुराशा,
मनमां न स्थान पामे,
ते दान सात्विकी छे,
मनमां न मान पामे। १४

और बदले की दुराशा रखे बिना और अभिमान किए बिना जो दान किया जाता है, वह 'सात्विकी दान' कहलाता है ।

उपकार ने ठेकाणे,
उपकार भाव राखी,
फल आश दुःखथी वा,
दे दान भेद राखी । १५

उपकार के बदले में उपकार करने की इच्छा से, पुण्य या उन्नति के फल की आशा से या दुखी होकर, मन में भेद रखकर, इच्छा न हो तो भी दान देना—

ते दान राजसी छे,
दिलदार दिल न देखे,
आ काम आवशे तो,
आपो कही परेखे । १६

यह 'राजसी दान' है । ऐसे दान के समय, दान लेनेवाले सच्चे दिल के आदमी को, देनेवाले का दिल नहीं दीखता है क्योंकि वह दान बदले की आशा से दिया गया है कि किसी दिन यह काम आयेगा ।

ना स्थान युक्त पेखे,
ना काल-पात्र देखे,
अपमान ने अवज्ञा,
करतो स्व-मान देखे । १७

जो दान युक्त स्थान देखे विना और समय तथा पात्र देखे बिना, अभिमान में भरकर, अपमान और अवज्ञा के साथ, अपने सम्मान के लिए दिया जाता है–

ते दान तामसी छे,
क्यां भावना मळे त्यां,
दामू न दाम आपे,
क्यां कामना फले त्यां । १८

वह 'तामसी दान' कहलाता है । ऐसे दान देने में भावना तो होती ही नहीं । पास में धन होते हुये भी जो धन दान न दे, उसकी कामना किस प्रकार पूरी हो सकती है !

श्रद्धा विना करे जे,
क्यां पामशे फलो तो,

फल आश त्यागना क्यां,
वातो करो कळो तो । १९

श्रद्धा रखे बिना दान करने से फल नहीं मिलता और जहाँ श्रद्धा नहीं होगी, वहां फल-त्याग की आशा रखने की बात करनी ही व्यर्थ है।

अब सात्विक, राजसिक, तामसिक ज्ञान के प्रकार सुनिये—

प्रत्येक भूतमां जे,
अणु मात्र सूतमां जे,
व्याप्यो अखण्ड रूपे,
अवकाश पूर्णमां जे । २०

प्रभु प्रत्येक व्यक्ति में, हर तत्व में और अणु में अखण्ड रूप से, और आकाश में पूर्ण रूप से व्याप्त हैं।

जे सर्वमां रहेलो,
छे सर्व रूप पोते,
छे रूप क्यां अरूपी,
जे भाव सूप पोते । २१

वह सर्व-व्यापी है, वह सर्व-रूपी है, उस अरूपी का कोई रूप नहीं है। वह सब भावनाओं का सार है।

अणुमां अकाशमां जे,
छे सूक्ष्म ने महत्तम,
अविभक्त अव्ययी जे,
विण अन्त छे बृहत्तम। २२

वह एक अणु में भी उतना ही भरा हुआ है, जितना आकाश में। वह सूक्ष्म में भी पूर्ण है और बड़ी से बड़ी वस्तु में भी पूर्ण है। उसके हिस्से नहीं हो सकते, उसका व्यय नहीं हो सकता, उसका अन्त नहीं हो सकता—वह अनन्त है और बड़े से बड़ा है।

जो ओळखे विभूने,
आ ज्ञान सात्विकी छे,
जरनो झरो तपासी,
ले मूल तात्विकी छे। २३

ऐसे व्यापक प्रभु का विचार करके, उसे पहचानने का जो प्रयत्न किया जाता है, वह 'सात्विकी ज्ञान'

कहलाता है। झरने में से जो उत्तमोत्तम दौलत झड़ रही है, उसके तत्व-मय मूल को पकड़ने के लिए चित्त को लगाकर प्रभु को पहचानना 'सात्विकी ज्ञान' है।

जे ज्ञान भिन्न भावे,
अस्तित्वने जतावे,
नानात्व भावनामां,
जे भूतने बतावे। २४

जिस ज्ञान से व्यक्ति भिन्न-भिन्न भावों में अर्थात् अपने से अलग प्रभु के स्वरूप को देखता है और जो नाना प्रकार की भावनाओं में ईश्वर के अस्तित्व को देखता है—

ते ज्ञान राजसी छे,
जो अन्तरे तपासी,
फरती क्रिया बतावे,
मन रङ्ग भार भासी। २५

वह ज्ञान 'राजसी' है। यदि तू अन्तर में घुसकर अर्थात् विचार करके उसका अध्ययन करेगा, तो तुम्हारा अन्तर (मन) स्वयं ही निर्णय कर लेगा।

छे एक देह वासी,
परमातमा समस्त,
छे एक देश वासी,
ते एक कार्य मस्त । २६

ईश्वर एक देह में रहनेवाला है, एक ही स्थान पर रहता है और एक ही काम में मस्त होकर काम करता है—

तत्वार्थमां न बुद्धी,
मन गर्त भेक जेवूं,
ते ज्ञान तामसी छे,
ते जो ठरे न तेवूं । २७

ऐसा विचार करनेवाले की बुद्धि तत्वार्थ में नहीं होती । उसका मन कुएँ के मेंढक के समान संकुचित होता है और वह व्यक्ति स्थिर चित्तवाला नहीं होता । ऐसे ज्ञान को 'तामसी ज्ञान' कहते हैं ।

सात्विक, राजसिक, तामसिक कर्म के प्रकार—

जे कर्म नित्य थाय,
नियमे रही सदाय,
आसक्ति राग द्वेषो,
ने कामना तजाय। २८

जो कर्म नित्य नियमानुसार किये जाते हैं, और जो आसक्ति तथा राग-द्वेष और कामना-रहित होते हैं,

ना कर्म फाल जोवा,
जेनूं हियूं तणाय,
ते कर्म सात्विकी ने,
ते दिव्य जो गणाय। २९

सम्पूर्ण कर्मों से मन को हटाकर, कर्म के फल में मन न लगाकर जो कार्य किया जाता है—वह 'सात्विक कर्म' है। ऐसा कर्म दिव्य गिना जाता है।

कामेप्सु भावना मां,
अभिमानथी प्रयत्ने,
जे कर्म राजसी ते,
जोवाय छे प्रयत्ने। ३०

जो काम फल की इच्छा की भावना से, अभिमान के साथ किये जाते हैं, वे 'राजसी' हैं।

जे काल देश शक्ती,
व्यय, आय, मित्र, सीमा,
परिणाम शोचता ना,
ते मूढ तामसी मां। ३१

जो कर्म देश, काल, आय, व्यय, सहायक, शक्ति और परिणाम सोचे बिना किये जाते हैं, वे 'तामसी कर्म' हैं।

आसक्ति हीन नाहं,
वादी धरी धिरज जे,
उत्साहथी करे जे,
मन शोचतो न रज जे। ३२

जिसको विषया में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं है, जो 'मेरा अस्तित्व प्रभु के चरणों में अर्पित है, मैं प्रभु से पृथक् नहीं हूँ'—ऐसा मानता है और जो धीरज धर कर उत्साह के साथ काम करता है—

सिद्धी मळ असिद्धो,
बेनी धरे स्पृहा ना,
ते सात्विकी गणाय,
कर्ता करे स्पृहा ना। ३३

और जिसमें सफलता या असफलता के लिए जरा भी स्पृहा (इच्छा) नहीं है, वह कर्त्ता 'सात्विकी' कहलाता है।

रागी फलो न छोड़े,
लोभी ममत्व मोहो,
छे शोक हर्ष कर्ता,
ते राजसी कुद्रोही। ३४

जो दुनियाँ के विषयों में लगा है, सब फलों को भोगना चाहता है, लोभ, मोह और ममत्व से भरा हुआ है और जो बात-बात में शोक, हर्ष तथा द्रोह किया करता है, वह कर्त्ता 'राजसी' कहलाता है।

राखे न लक्ष कर्मे,
शठ आलसी अकर्मा,
दुःखमां रहे विषादी,
संतोष क्यां कुकर्मा । ३५

जिसका लक्ष्य कर्त्तव्य की तरफ नहीं रहता, जो दुष्ट और आलसी है, जिसकी इच्छा काम करने की नहीं होती और जरा से दुख में जो रोने लगता है—ऐसे कुकर्मी को सन्तोष कैसे मिल सकता है ?

छे दीर्घ सूत्र तेनो,
निज मन्त्रने अतोषी,
कर्ता ते तामसी छे,
विष बीज छेक दोषी । ३६

जो धीरे-धीरे काम करने वाला अर्थात् सुस्त है, जिसे अपने मन्त्र में असन्तोष है, वह अन्त तक अपने में दोष-युक्त विष के बीज बोया करता है। ऐसा करने वाला 'तामसी' है (आलस्य और अकर्म—ये तामसी कर्त्ता की जड़ हैं)।

सात्विकी, राजसी, तामसी बुद्धि के प्रकार ये हैं–

जेनी प्रवृत्ति धर्मे, छे पापथी निवृत्ती,
क्यां काम केम करवू, तेमां सजग प्रवृत्ती । ३७

जिसकी प्रवृत्ति केवल धर्म (सत्य) की तरफ है और पाप से जिसकी बुद्धि ने निवृत्ति पा ली है और किस जगह कौन सा काम करना–इस बात में जिसकी प्रवृत्ति सजग है ।

शुं काम बंध थाय, छे सार मोक्ष सामा,
जे बुद्धि जाणती आ, ते सात्विकी न शामां । ३८

अगर व्यक्ति क्रिया-रहित हो जाये तो मुक्ति कहाँ से मिलेगी ? जो बुद्धि इस बात को जानती है, वह 'सात्विकी बुद्धि' है ।

जे धर्मने अधर्मे, फावे न निश्चयेथी,
कर्तव्य मांही चूके, ते राजसी नशामां । ३९

क्या करना, क्या न करना' इसका निश्चय जो नहीं कर सकता और जो कर्त्तव्य-पालन में चूक जाता है, वह 'राजसी' नशे में है ।

आ पाप धर्म भासे, हित देखतो अहित मां,
आज्ञान आवरण मां, ते तामसी नशामां । ४०

जो प्रत्येक स्वार्थ के काम को ही धर्म समझता है (अर्थात् स्वार्थी है); जो अहित में ही अपने हित को देखती है और जो बुद्धि अज्ञान के पर्दे में ढँकी हुई है, वह 'तामसी बुद्धि' है।

सात्विकी, राजसी, तामसी धारज के प्रकार—

जे धैर्य चित्त रोके, मन वैषिकी क्रियाथी,
योगे धरी जडे जे, धी चालती क्रियाथी। ४१

जो धीरज मन को विषय की क्रियाओं से रोकने में सहायक होता है, जिससे योग के अभ्यास में मन चिपक जाता है और जिसकी सहायता से युक्त क्रिया करने में बुद्धि का प्रेरणा मिलती है—

ते धैर्य सात्विकी छे, व्यभिचार ज्यां न बाधे,
निज अंग जंग जोरे, माया अनल न दाझे। ४२

वह धैर्य 'सात्विकी' है। वहाँ व्यभिचार सताता नहीं है और अपनी धारणा शक्ति की तीव्रता से माया-रूपी अग्नि जिसे नहीं जलाती है।

जे धैर्य सिद्धि आपे, धर्मार्थ कामनानी,
ते राजसी फलोमां, ज्यां धृण कामनानी। ४३

जो धीरज धर्म, अर्थ और कामना की सिद्धि देने-वाला है और जिससे कामना की ही धुन लगी रहती है, वही धीरज 'राजसी' कहलाता है।

जेथी न ऊँघ जाय, भय शोकने विवाद,
जो नित्य ते नवा छे, ईर्षा अने विषाद। ४४

जिस धैर्य से नींद बहुत आती है, रोज नये-नये भय, शोक, विवाद, ईर्ष्या और विषाद पैदा होते हैं—

ते धैर्य तामसी छे, जेमां कुबुद्धि ताणे;
ते धैर्य ना गणाय, आलस्य शुद्धि ताणे। ४५

वह 'तामसी' धैर्य है। वह मनुष्य को कुबुद्धि और आलस्य की ओर खींच ले जाता है, इसलिये उस धैर्य की धैर्य में गणना नहीं की जा सकती।

आ जो गुणो गणाय, ते सर्व बुद्धि बांधे,
जो तो स्वभाव तारे, क्यां तार सार सांधे। ४६

ऊपर कहे हुये गुणों में, प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि बँधी रहती है। प्रत्येक गुण को अपने स्वभाव के अनुसार व्यक्ति अनुभव करता है कि, हमारी बुद्धि उसके तार में बँधी हुई है, अब उसमें से छूटे कैसे!

रण रम्य रंग नाचे, रसमां स्वभाव तेना,
तू जो विचार जंगे, तो नाच रंग तेना । ४७

इस विश्व-रूपी युद्ध के रम्य नाच में, प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार रस में फँसकर नाचता है। इसीलिए तू विचार-रूपी युद्ध में विजयी होकर, सत्य विचार के रङ्ग में नाच।

आ आवती जती छे, झाले न हाथ चूके,
तू नाचतो न चूके, तो कण्ठ हाथ मूके । ४८

यह माया आने-जानेवाली है, यह संसार को भुलावे में डालती है और नए-नए नाटक दिखाती है। इसलिए यदि प्रभु तेरा हाथ न पकड़ेगा, तो तू नाचने में चूक जायेगा। यदि तू अपनी होशियारी से नाचने में चूकता नहीं है, तो माया तेरे गले में हाथ डालकर तुझे फँसा लेगी।

शुं द्रव्य गुणमां छे, जो तुं फसाय ना तो,
तारा रचेल रंगे, तू कां न नाच गातो । ४९

हे जीव ! तू जरा असल बात तो सोच, इन तत्वों के गुणों में क्या रक्खा है ? यदि तेरा मन इस नाटक के एक्टिङ्ग (अभिनय) में न फँसे और तू समझ ले कि यह

रङ्ग तेरा ही बनाया है, तो तू चाहे जितना नाचे, तुझे कुछ भी दोष नहीं लगेगा।

जो एक विश्वमां छे,, 'मोती' जड़ेल नागी,
तेनूज नाम माया, तू नाच संग जागी। ५०

यदि तुझे जगता का अध्ययन करना है, तो एक ही उपाय है। इस विश्व में एक चीज है, जिसे माया कहते हैं और जो नङ्गी है, उसमें मोती जड़ा हुआ है। इसे तू अच्छी तरह समझ ले और जागता हुआ नाच कर। यदि भुलावे में पड़ा, तो माया तुझे खा जायेगी।

आंखो मळे पडे तो, चापे चढ़ी ते छाती,
उठायना न झाले, कर श्री गुरु दयाथी। ५१

यदि कहीं उस माया के साथ नाचने में जरा सी नींद आ गई, तो यह तुझे पटककर तेरी छाती पर चढ़ तुझे दबा देगी। उस समय यदि गुरु दया करके तेरा हाथ नहीं पकड़ेगा, तो तू उठ नहीं सकेगा।

हुँशीयार जो कहूं हुँ, आ मार्ग चाल चेती,
'मोती' पडे न ताहुं, कर राख माल चेती। ५२

इसीलिए गुरुदेव शिष्य से कहते हैं कि तू होशियार रह। तेरे पास जो मोती है, वह गिर न जाय, इसके लिये उसको अच्छी तरह से पकड़ कर मार्ग में चैतन्य होकर चल।

जो भूलथी पडे तो, लूटी ने मारशे ते,
खोवाय माल तारो, 'मोती' खरी जशे ते। ५३

यदि वह मोती भूल से भी गिर जायेगा, तो माया तुझे लूट कर मारेगी और तेरा माल अर्थात् तेरी सब कमाई भी नष्ट हो जायेगी।

अन्तराग्नि-होत्र

अन्नादि भोजनो जे, जगमां मनुष्य खाये,
ते पित्तथी जिराये, रस रूप फेरवाये । १

अन्न आदि भोजन जो मनुष्य इस जगत् में खाता है, वह पित्त से पचता है और फिर उसका रस बन जाता है ।

रस देह चक्र नाड़ी, घूमे परीण मनथी,
फरि फेर सप्त धातु, जागे जरी जमणथी । २

वह भोजन पचकर उसमें से बना हुआ रस देह की नाड़ियों के चक्र में घूमता है । इसी घुमाव के कारण देह में सप्त धातुयें बनती हैं—१ रस, २ मांस, ३ मेद, ४ मज्जा, ५ रक्त, ६ शुक्र और ७ अस्थि ।

ते सूक्ष्म थाय ज्यारे, मननो अहार तारे,
पण अन्न ऊर्मियोना, तेथी थशे किनारे । ३

जब ये सब धातुयें बनकर इनमें सूक्ष्मत्व उत्पन्न होता है, तब वह मन का आहार बन जाता है, लेकिन मन की ऊर्मियाँ अलग नहीं होती हैं ।

अभ्यास योग द्वारा, मन रोकवा करें जो,
ना अन्न खाय सारूँ, मन पर असर करे जो । ४

जो साधक योग के अभ्यास-द्वारा मन के रोकने का प्रयत्न करता है, वह यदि शुद्ध अन्न नहीं खायेगा, तो उसके मन पर असर जरूर पड़ेगा।

तेथी विचार बगडी, ने हीन कर्म थाय,
चित्त चालतू रुकेना, ना योग सिद्ध थाय। ५

उस 'तामसी अन्न' से विचार बिगड़ेंगे और कर्म भी हीन होंगे। चित्त की चञ्चलता नहीं रुकती और उससे योग भी सिद्ध नहीं होता। अर्थात् युक्त आहार-विहार से ही योग सिद्ध होता है।

कुत्सित विचारवाळा, साथे रही न खाव,
भिक्षा न मागवी त्यां, तेनुं न अन्न खाव। ६

नीच विचारवाले मनुष्यों के पास बैठकर खाना नहीं चाहिए। यदि तुम संन्यासी हो, तो ऐसे मनुष्य के यहाँ भिक्षा भी नहीं माँगनी चाहिए और उसका अन्न भी नहीं खाना चाहिए।

रस स्वाद गुण वर्णना, तेनो विचार करवो,
जे अन्न हाथ आवे, त्यां ब्रह्म भाव धरवो। ७

स्वादिष्ट राजसी, सात्विक या तामसी जैसा भोजन सामने आए, उसे रस और स्वाद के कारण वैसे ही

नहीं खाने लगना चाहिए; बल्कि जब अन्न खाने को मिले, तब प्रभु का ध्यान करके भोजन करे। इससे अन्न बाधक नहीं होता।

जमनार ब्रह्म ध्यावो, ते अन्न ब्रह्म-रूप,
ते ब्रह्म थी जणायुं, छे ब्रह्म तत्वस्वरूप। ८

जो खानेवाला है, वह ब्रह्म का ध्यान करे। अन्न में भी ब्रह्म को देखे, क्योंकि वह अन्न ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और ब्रह्म ही उसका रूप है।

जे आयु, वर्धनी छे, उत्साह बल वधार,
आरोग्य प्रेम सुखने, पोषी आनन्द धारे। ९

इस प्रकार ध्यान करके यदि व्यक्ति भोजन करता है, तो भोजन की कुत्सित वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और इससे आयु, उत्साह तथा बल की वृद्धि होती है, जो आरोग्य, प्रेम तथा सुख को देकर आनन्द बढ़ाता है।

रस-युक्त स्निग्ध भोजन, छे सात्विक गुणी जन,
खाता विकार नाना, ना थाय शुद्ध भोजन। १०

रस-युक्त और चिकना भोजन सात्विकी भोजन' है। उसके खाने से नाना प्रकार के विकार पैदा नहीं होते और वह शुद्ध भोजन कहलाता है।

कटवम्ल उष्ण खारा, अति-रूक्ष तीव्र तीखां,
आहार राजसी जे, जणता कुरोग फोका। ११

कड़वा, खट्टा, गर्म, खारा, अति सूखा और बहुत मिर्चवाला—ये सब 'राजसी आहार' हैं, इन्हें खाने से कुरोग पैदा होते हैं।

ते शोकमां उतारे, दिल दाहने वधारे,
दुःखना उभार जारी, करता न नेह धारे। १२

ये राजसी भोजन खाने से मन में रूखापन अर्थात् शोक हो जाता है, मन जलने लगता है (शारीरिक और मानसिक दाह बढ़ती है), दुःख का उभार जारी रहता है, बुरे विचार आते हैं और निष्काम प्रेम नहीं हो सकता।

बगडेल अर्ध पाक्यां, रस-हीन गन्ध खोटी,
वाशी जमेल एठां, अडकेल बुद्धि खोटी। १३

जो फल बिगड़ा या सड़ा हुआ हो, आधा पका, रस-हीन, दुर्गन्धिवाला हो और जो अन्न बासी हो, खाया हुआ हो, जूठा हो, त्यागा हुआ हो तथा जिसे बुरे विचारवाले व्यक्ति ने छुआ हो—

ते अन्न तामसी छे, जे खाय बुद्धि खारी,
चोरी तथा छिनाळी, पर पीडता दुगारी। १४

वह तामसी भोजन है। उसके खाने से बुद्धि खराब हो जाती है। ऐसे अन्न खाने से चोरी, पर-स्त्री-गमन, दूसरों को दुःख देने की और जुआ आदि खेलने की इच्छा पैदा होती है।

तेथी बचीने चालो, खाओ न सर्व संगे,
ते जो न थाय तो आ, ऊपाय पाळ संगे। १५

इसलिए दुनियाँ में बहुत सँभलकर रहना चाहिए, सबके साथ नहीं खाना चाहिए। अगर ऐसा न हो सके, तो नीचे लिखा उपाय पालन करो—

निज मन्त्र भावनामां, होमी जमो प्रसंगे,
ना दोष अन्न लागे, ज्यां जाओ खाओ रंगे। १६

ऐसे अवसर पर अन्न को अपने मन्त्र की भावना में होम करके खाओ तो अन्न का दोष भस्म हो जायेगा और खानेवाले को दोष नहीं लगेगा। इस रीति से तुम कहीं भी जाकर खा सकते हो।

अनुकूल काल पामो, कर प्राण यज्ञ सामो,
नीचे लखेल मन्त्रो, आपे सदा विसामो। १७

यदि समय अनुकूल हो, तो नीचे लिखे मन्त्रों से प्राण-यज्ञ करना, इससे भोजन की खराबियाँ नष्ट होकर आराम मिलेगा।

जे अन्न सामने छे, पहेलो गरास लावी,
कर ध्यान ब्रह्म वेदी, आत्मा अनल जगावी । १८

जो अन्न सामने आये, उसके पहले ग्रास को उठाकर ब्रह्म-रूप वेदी का ध्यान करके, आत्मा की अग्नि जलाकर—

जठराग्नि होम 'प्राणाय स्वाहा' मन्त्र बोली,
तो प्राण थाय तृप्त, ने थाय तृप्त चक्षु । १९

'प्राणाय स्वाहा' मन्त्र से जठराग्नि में हवन करना । उससे प्राण तृप्त होते हैं, प्राण की इन्द्रिय चक्षु (नेत्र) तृप्त होते हैं ।

जो नेत्र तृप्त थाय, आदित्य तृप्त खोली,
आदित्य द्यौ खिलावे, तो त्यां रह्यूं जे सर्व । २०

नेत्र के तृप्त होने पर उसका दैवत सूर्य भी तृप्त होगा, सूर्य के तृप्त होने से आकाश-मण्डल भी तृप्त होगा ।

ते तृप्त थाय तेथी, वृठे पशु प्रजा जे,
ते जो प्रसन्न तोपे, श्री ब्रह्म सर्वमां जे । २१

आकाश-मण्डल के तृप्त होने से वहाँ रहनेवाली प्रजा और पशु प्रसन्न होंगे और उसमें रहनेवाला ब्रह्म प्रसन्न होकर सन्तुष्ट हो जायगा ।

बीजो ग्रास 'व्यानाय स्वाहा' मन्त्र होमे,
तो व्यान तृप्त थातां, जग श्रोत्र तृप्त होमे । २२

दूसरे ग्रास को 'व्यानाय स्वाहा' मन्त्र कहकर हवन करना, उससे व्यान तृप्त होगा, विश्व के कान तृप्त होंगे ।

ते चन्द्र तोषकारी, दिक् सोमथी ठरे छे,
दिक् सोम तृप्त थाये, तो सर्व त्यां रह्युं जे । २३

उससे चन्द्रमा सन्तुष्ट होगा और चन्द्रमा की दिशायें भी तृप्त होंगी । दिशाओं के तृप्त होने पर वहां जो कुछ भी है, वह सब तृप्त हो जायेगा ।

ते तृप्त थाय तेथी, तृप्ते पशु प्रजा जे,
ते जो प्रसन्न तोये, श्री ब्रह्म सर्वमां जे । २४

उस सबके तृप्त होने से वहाँ की प्रजा तथा पशु प्रसन्न होंगे और वहाँ रहनेवाला ब्रह्म भी प्रसन्न होगा ।

त्रीजो हुं ने 'अपानाय स्वाहा' मन्त्र लगी,
त्यां तृप्त थाय वाणी, तेथी प्रसन्न अग्नी । २५

तीसरा ग्रास लेकर 'अपानाय स्वाहा' मन्त्र से हवन करना, उससे वाणी प्रसन्न होगी । वाणी के प्रसन्न होने पर उसकी दैवत अग्नि प्रसन्न होगी ।

तो तोष पामती भू, पृथ्वी अनल वस्या जे,
ब्रूठे प्रजा पशु ने, श्री ब्रह्म सर्वमां जे। २६

उससे इस पृथ्वी का गोला तृप्त होगा और उसमें रहनेवाली अग्नि तृप्त होगी। उनमें रहनेवाली प्रजा, पशु और उनमें रहनेवाले ब्रह्म भी सन्तुष्ट होंगे।

चोथू हवन 'समानाय स्वाहा' मन्त्र तोषे,
मन मेघ विद्यु त्यां जे, पशुने प्रजा प्रभू जे। २७

चौथा ग्रास 'समानाय स्वाहा' कहकर हवन करने से मन-रूपी बादल की बिजली तथा उसमें रहनेवाली प्रजा, पशु और ब्रह्म सन्तुष्ट हो जायेंगे।

त्यां पांचमी 'उदानाय स्वाहा' तोषती जे,
त्वक्, वायु, व्योम त्यानी, पशुने प्रजा प्रभू जे। २८

पाँचवें ग्रास को 'उदानाय' स्वाहा मन्त्र कहकर हवन करो। इससे त्वचा, वायु, आकाश, वहाँ की प्रजा, पशु और ब्रह्म सबको सन्तोष होगा।

जे यज्ञ आ करे छे, ते विश्वने जमाडे,
अन्तर्तणा विभूने, संतोष मां रमाडे। २९

ऊपर लिखी विधि से जो यज्ञ करता है, वह सारे विश्व को भोजन कराता है, उसके अन्तर में रहनेवाले विभु को भी सन्तोष मिलता है।

***

मुमुक्षु मार्ग

(रहस्योद्घाटन)

गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों

के

आधार पर

ॐ, राम, कृष्ण, गायत्री, नवार्ण,

मृत्युञ्जय आदि मन्त्रों का रहस्यार्थ

एवम्

कुण्डलिनी-रहस्य, योग-रहस्य,

पादुका-रहस्य, पूजा-रहस्य

आदि

महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन

मूल्य : १०-०० रु०